18

सामाजिक संस्था के रूप में राज्यः इसकी भूमिका और अन्य संस्थाओं पर प्रभाव

* *गौथमा प्रभु*

प्रस्तावना

इस खंड में एक संस्था के रूप में राज्य तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं पर इस के प्रभावों की चर्चा की गई है। इसमें राज्य और राजनीति से जुड़े कई अन्य संदर्भों के बारे में आरंभिक सूचना भी प्रदान की गई है।

आधुनिक राज्य संस्थाओं का एक मिश्रित समूह है जो सर्वोत्तम रूप से संघटित और निर्मित है। राज्य बनाने वाले लोगों को व्यक्ति नहीं अपितु नागरिक या मतदाता माना जाता है। चूंकि कानूनों ने उन्हें समानता प्रदान की है अत: आदर्श रूप में कहा जाए तो सभी नागरिक (और यह हमारे संविधान में अच्छी तरह वर्णित है) अधिकारों और सुविधाओं के लिए एक समान माने जाते हैं। प्रशासन और शासन के लिए राज्य ने संस्थाओं का जाल बनाया हुआ है। सरकार व्यक्तियों और कार्मिकों से मिलकर बनी है जिन्होंने इन संस्थाओं को अपनाया हुआ है और जो अपने कार्यालय से अपने अधिकार प्राप्त करते हैं।

राज्य

एक निश्चित भू-भाग में एक स्वतंत्र राज्य सरकार के अंतर्गत राजनीतिक रूप से संगठित किसी समुदाय या समाज को राज्य कहा जा सकता है। राज्य एक विशेष संख्या है जो संपूर्ण समुदाय या समाज के एक वर्ग के हितों को पूरा करती है। राज्य सामाजिक विकास की एक निश्चित स्थिति पर प्रकट होता है और राज्य को समझने के लिए पहले सामान्य रूप से सामाजिक विकास को समझना आवश्यक है। सामाजिक विकास के सामान्य नियमों को समझे बिना राज्य और राजनीति को वास्तविक रूप से नहीं समझा जा सकता।

राज्य के मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं :

जनसंख्या

सभी राज्यों की एक आबादी होती है। आबादी या जनसंख्या की कोई स्पष्ट या निश्चित संख्या आदर्श संख्या नहीं हो सकती। किसी समुदाय को राज्य के रूप में मान्यता देने की पात्रता के लिए आवश्यक व्यक्तियों की संख्या, नियंत्रित करने का कोई नियम या राजनीतिक परंपरा नहीं है। फिर भी अतीत में कुछ लेखकों ने मौटे तौर पर कुछ नियमों का वर्णन करने का प्रयत्न

* *गौथमा प्रभु, यंग प्रोफेशनल, कापार्ट*

किया है जिसके अनुसार राज्य के अस्तित्व के लिए आवश्यक जनसंख्या के आकार को निश्चित करना चाहिए। जबकि कुछ ने तो न्यूनतम एवं अधिकतम सही संख्या निश्चित की है लेकिन ऐसे किसी नियम को अधिसूचित करना मनमाना तथ्य है।

राज्य क्षेत्र

क्षेत्र राज्य का एक और आवश्यक भौतिक घटक है। राज्य के प्रदेश में न केवल भूमि का निश्चित भाग आता है। अपितु इसकी सीमा में आने वाला जल और वायु क्षेत्र भी इसमें शामिल होता है। यह समुद्री तट से तीन मील तक बढ़ाया भी गया है इसे सीमांतर्गत जलक्षेत्र कहा जाता है। राज्य की सीमा प्राकृतिक या कृत्रिम हो सकती है अर्थात वे जल, पर्वत शृंखला, रेगिस्तान और जैसे पत्थर, खाइयाँ, दीवार आदि के रूप में हो सकती है। राज्य का वास निर्माण के लिए आवश्यक सीमा के विस्तार का कोई नियम या परंपरा नहीं है जो जनसंख्या के संबंध में जो है उससे अधिक की बात करती हो। अर्थात् राज्य के अस्तित्व के लिए जनसंख्या के आकार के अनुसार क्षेत्र का कोई संबंध नहीं है।

सरकार

जब तक लोग राजनीतिक रूप से संगठित हो कर कोई सिविल सरकारन न बना ले तब तक जनसंख्या द्वारा व्यावहारिक रूप से प्रदेश का कोई भाग ग्रहण कर लेने से ही राज्य का निर्माण नहीं होता किसी राजनीतिक एजेंसी का होना आवश्यक है जो आज्ञा मानने वालों को आदेश देती हो, व्यवस्थित करती हो और उन्हें नियंत्रित करती हो। सरकार राज्य के अधिकारों का प्रयोग करती हो। सरकार का राज्य की अपेक्षा सीमित अर्थ होता है सरकार राज्य का एक अंग है। राज्य में शासन और शासित दोनो शामिल हैं। सरकार राज्य के राजनीतिक प्रशासन का एक स्थापित रूप है।

प्रभुसत्ता

इसका अर्थ है राज्य की सर्वोच्च एवं एक मात्र शक्ति जिसके द्वारा यह आदेश देता है और आदेशों को लागू करता है। इसी के आधार पर राज्य अन्य सभी एसोसिएशनों और संगठनों से भिन्न होता है। प्रभुसत्ता सरकार की नहीं राज्य की विशेषता होती है यद्यपि राज्य की तरफ से सरकार इसका प्रयोग कर सकती है। प्रभुसत्ता के बिना कोई राज्य नहीं हो सकता।

अंतर्राष्ट्रीय मान्यता

वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय मान्यता राज्य की प्रभुसत्ता का परिणाम है न कि उसके अस्तित्व की शर्त। कई बार राज्यों को अन्य राज्यों के साथ हुई मान्य संधि के अनुसार परिभाषित किया जाता है।

एक राज्य दूसरे राज्य को तब मान्यता प्रदान कर देता है जब उसकी सरकार संतुष्ट हो जाती है कि उस राज्य में राज्य की विशेषताएँ मौजूद हैं। राज्य द्वारा दूसरे राज्य को मान्यता प्रदान करना उसकी इच्छा पर निर्भर करता है।

मान्यता दो प्रकार की होती हैं : वास्तविक में और कानून के अनुसार।

वास्तविक मान्यता का अर्थ है कि राज्य को वास्तव में उसके अस्तित्व के रूप में तो मान्यता है लेकिन जरूरी नहीं कि कानून में उसे मान्यता प्राप्त हो। कानून के अनुसार मान्यता का अर्थ है कि राज्य न्यायपूर्ण ढंग से उत्पन्न न्याय संगत अस्तित्व वाला है।

राज्य की भूमिका और अन्य संस्थाओं पर उसका प्रभाव

राज्य को सभी सार्वजनिक वस्तुएँ जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल पेयजल, तथा आधारभूत संरचनाएँ सभी ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में प्रदान करने का दायित्व होता है वह सामाजिक सुरक्षा आदि भी प्रदान करता है।

भारत में इस से कम में बनाई गई 10 वीं योजना के परिदृश्य में निवेश मूलक दृष्टिकोण से हटकर सुधारात्मक कार्यसूची बनाई गई ताकि प्रभावशाली व्यवस्था के माध्यम से सामाजिक उद्देश्य प्राप्त किए जा सके। यह केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों, पंचायत राज संस्थाओं तथा गैर सरकारी संगठनों की शक्ति को सक्रिय करने पर निर्भर करती है ताकि सामाजिक विकास के स्पष्ट रूप से परिभाषित कार्यों को पूरा किया जा सके। निर्धन या लक्ष्य समूहों के लिए निर्धारित कार्यक्रम उन्हें प्रभावशाली ढंग से पहुँचाए जाए। सरकार की कार्यशैली में कई व्यापक परिवर्तन किए गए तथा इसकी एजेंसियों को अधिक दक्षता, पारदर्शिता और जिम्मेदारी से कार्य करने का सुझाव दिया गया।

संविधान और कानून

"कानून" मानव व्यवहार के मार्गदर्शन के लिए नियमों पर लिए लागू किया जाता हैं। लोगों का कोई समूह व्यवहार के इन नियमों के अभाव में अधिक समय तक शांति और अशांति से नहीं रह सकता। नियमों का लिखित होना आवश्यक नहीं है। ये परपंराओं और प्रथाओं के रूप में भी हो सकते हैं।

कानून (ला) शब्द लेग (पैर) ले लिया गया है जिसका अर्थ है स्थिर रहने वाली वस्तु। अत: इसका अर्थ है कि कानून सिद्धांतत: स्थिर या एक समान या सामान्य रूप से पालन करना होता है। गैटेल ने कानूनों को मानव व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया है :

(i) नैतिक कानून (ii) सामाजिक कानून (iii) राजनीतिक कानून

प्रायः लोग कानून का पालन करते हैं (क) राज्य की शक्ति के कारण (ख) सामान्य कल्याण की वृद्धि के लिए, या (ग) कानून का पालन करने की आदत के कारण। फिर भी यदि हम उचित रूप से यह समझते हैं कि कोई विशेष कानून अन्यायपूर्ण है तो हमें उस कानून के विरूद्ध जनमत बनाना चाहिए। महात्मा गांधी ने दिखा दिया कि असयोग और सिविल अवज्ञा की तकनीकों को तानाशाही राज्य के विरूद्ध कितने प्रभावशाली ढंग से प्रयोग किया जा सकता है।

विधानपालिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका

विधानपालिका

सरकार के तीन अंगों में से विधानपालिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग है। क्योंकि यह लोगों का प्रतिनिधित्व करती है और उनकी आशाओं और विश्वास को कानूनों के रूप में उतारने का प्रयास करती है। विधानपालिका राजनीतिक प्रणाली की सरकारी कानून बनाने वाली संस्था है।

भारतीय संविधान ने सरकार की संसदीय प्रणाली को अपनाया है। इसमें कार्यपालिका चुनाव के द्वारा गठित विधानपालिका के प्रति उत्तरदायी होती है।

विधानपालिका का मुख्य कार्य कानून के विवरणों की जाँच करना और कानूनों की स्वीकृति को प्राधिकृत न्यायसंगत बनाना, दोनों ही अर्थों में वैधानिक रूप प्रदान करना है।

संघीय राज्यवस्था होने के कारण हमारे संविधान में केन्द्रीय स्तर तथा राज्य स्तर भी विधान पालिकाएँ प्रदान की हैं।

कार्यपालिका

कार्यपालिका सरकार के संगठन एक भाग है। इसका कार्य विधानपालिका द्वारा निर्मित कानूनों को लागू करना तथा सामान्य प्रशासन का कार्य करना है।

आधुनिक राज्य को कल्याणकारी राज्य में परिवर्तित होने से कार्यपालिका के कार्य काफी व्यापक हो गए हैं।

विश्व के विभिन्न भागों में कार्यपालिका द्वारा किए जाने वाले कार्य निम्नलिखित हैं :

क) कानून और व्यवस्था बनाए रखना

ख) देश की सुरक्षा तथा कूटनीतिज्ञ संबंध बनाना

ग) कानूनों को लागू करना

घ) मुख्य कार्यपालक को वैधानिक अदालतों द्वारा दण्डित व्यक्तियों को क्षमा करने, मुक्त करने फांसी रोकने का अधिकार होता है।

ङ) विविध मिश्रित कार्य जैसे देश की अधिक समृद्धि के लिए राष्ट्रीय योजनाएँ बनाना अपने कार्य क्षेत्र में विशिष्ट व्यक्तियों को या राज्य की प्रशासनिक सेवा करने वाले व्यक्तियों को सम्मान और डिग्रियाँ प्रदान करना।

न्यायपालिका

न्यायलिका सरकार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि कानून द्वारा परिभाषित न्याय को नागरिकों के बीच और नागरिकों तथा सरकारी सदस्यों के बीच लागू करता है।

प्राय: न्यायपालिका का अर्थ उन सरकारी अधिकारियों से हैं जिनका कार्य प्रत्येक मामलों में विघमान कानूनों को लागू करना होता है।

इन अधिकारियों का दायित्व होता है कि किसी भी मामले में संबंधित तथ्यों की जाँच करें और निर्दोषों को विधान पालिका या सरकार की कार्य पालिका से रक्षा करें।

न्यायपालिका के मुख्य कार्य हैं (क) न्याय लागू करना ख) अधिकारों और स्वतंत्रताओं की रक्षा करना ग) संविधान की रक्षा एवं व्याख्या करना घ) संघीय स्वरूप की रक्षा करना ङ) कार्यपालिका को सलाह देना आदि।

नागरिकता, अधिकार और कर्त्तव्य

नागरिकता

पारंपरिक राज्यों में जहाँ अधिकांश आबादी पर राजा या शासक का शासन चलता था उनको नियंत्रित करने में उन्होंने तुच्छ जागरूकता या रूचि दर्शाई। उनके पास कोई राजनीतिक अधिकार या प्रभाव नहीं था। साधारणत: केवल आधिपत्य वर्ग या अधिक प्रभावी समूह समग्र राजनीतिक समुदाय से संबंधित होने का अनुभव करने लगते हैं।

आधुनिक सभ्यताओं में इसके विपरीत राजनीतिक व्यवस्था की सीमा में रहने वाले अधिकतर व्यक्ति नागरिक होते हैं जिनके सामान्य अधिकार और कर्त्तव्य हैं तथा वे स्वयं को राष्ट्र का एक हिस्सा मानते हैं। जबकि कुछ लोग राज्य विहीन राजनीतिक शरणार्थी होते हैं। लेकिन आज लगभग प्रत्येक व्यक्ति किसी निश्चित राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था का सदस्य होता है। अर्थात किसी न किसी राज्य का नागरिक होता है।

अधिकार

अपने व्यक्तित्व के विकास और कुल मिला कर समाज के विकास के लिए प्रत्येक सामाजिक पुरूष एवं महिला का अधिकार संपन्न होना एक सामाजिक आवश्यकता है। अधिकारों के दो पक्ष हैं वैयक्तिक एवं सामाजिक अधिकारों का सामाजिक रूप होता है जो केवल समाज में रहने वाले तथा समाज के समग्र हित में कार्य करने वाले लोगों को ही प्रदान किए जाते हैं।

ग्रीन के अनुसार अपने उद्देश्यों के लिए कार्य करने की शक्ति अधिकार है जो समाज के द्वारा प्रत्येक उस व्यक्ति को प्रदान किए जाते हैं जिसके बारे में लगता है कि यह समाज के कल्याण के लिए योगदान करेगा।

कर्त्तव्य

अधिकार के बिना कर्तव्य नहीं और कर्त्तव्य के बिना कोई अधिकार नहीं। कर्त्तव्य का अर्थ है किसी अधिकारी या प्राइवेट व्यक्ति को कानून के द्वारा कोई कार्य सौंपना। इस प्रकार कर्त्तव्य में यह पहले से ही मान लिया जाता है कि व्यक्ति नियमों/कानूनों को जानने में सक्षम है। बच्चों, मूर्खों तथा पशुओं से कानून जानने और उनके अनुसार कार्य करने की कल्पना नहीं की जा सकती। फिर भी हमने बच्चों, मूर्खों तथा यहाँ तक कि पशुओं को भी कुछ अधिकार प्रदान किए हैं।

लोकतंत्र, कुलीन वर्ग सिद्धांत तथा अधिकार

लोकतंत्र

डेमोक्रेशी (लोकतंत्र) शब्द दो यूनानी शब्दों, डेमोस (Demos) जिसका अर्थ ही लोग है तथा क्रेटिया (Kratia) जिसका अर्थ है सरकार से लिया गया है। लोकतंत्र का अर्थ व्यापक है इसमें राजनीतिक समानता के सिद्धांत के साथ सामाजिक और आर्थिक न्याय को जोड़ा गया है। इब्राहिम लिंकन ने कहा है "लोकतंत्र का अर्थ है लोगों की, लोगों के लिए, लोगों द्वारा बनाई गई सरकार" लोकतंत्र ही सरकार का एकमात्र रूप नहीं है। यह समाज का एक रूप या शर्त भी है तथा इसके साथ एक व्यवस्था भी है जिसमें संपत्ति का अधिकार व्यापक रूप से दिया गया है यहाँ तक की समान रूप से सबको प्रदान किया गया है।

कुलीन वर्ग सिद्धांत

कुलीन वर्ग सिद्धांत सर्वप्रथम दो इटली के समाजशास्त्री बिल फ्रेडो प्रेटो तथा जी. मोसका द्वारा विकसित किया गया है।

कुलीनवर्ग सिद्धांत का कथन है कि व्यक्तियों के व्यक्तिगत गुण शासक को शासित से अलग करते हैं। कुलीनवर्ग अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं या गुणों की श्रेष्ठता के कारण अपनी स्थिति प्राप्त करते हैं। उदाहरण के लिए उनमें पर्याप्त संगठनात्मक योग्यता होती है और मोसका के अनुसार नेतृत्व की प्रवीणता प्राप्त कर सकते हैं। दूसरी तरफ वे उच्चतम घूर्तता और चतुराई अपना सकते हैं जिन्हें प्रेटो शक्ति की पूर्व आवश्यकताएँ मानते हैं।

बाद के समय में उनका कुलीन वर्ग सिद्धांत शक्ति संपन्नता के व्यक्तिगत गुणों पर कम बल देता है और समाज के संस्थागत ढाँचे पर अधिक बल देता है उनका तर्क है कि सामाजिक संस्थाओं के वंशानुगत संगठन तक अल्प संख्यक वर्ग को संपूर्ण अधिकार जमाने की अनुमति देता है।

कुलीन वर्ग सिद्धांत ने आदर्श राज्य के रूप में साम्यवाद के विचार को नकार दिया तथा तर्क दिया कि समानता वाला समाज एक भ्रम है। यह मार्क्सवाद को समाज का वास्तविक विश्लेषण की अपेक्षा एक विचारधारा मानता है। कुलीन वर्ग सिद्धांत तर्क देता है कि सभी समाज दो मुख्य समूहों में विभाजित होते हैं एक शासक अल्पसंख्यक तथा दूसरा शासित वर्ग और यह स्थिति अनिवार्य है। कुलीन वर्ग सिद्धांत के अनुसार यदि सर्वहारा क्रांति भी होती है इसका एकमात्र परिणाम शासक और शासित वर्ग में परस्पर परिवर्तन ही होगा।

आर्थिक संरचना चाहे पूँजीवादी हो या साम्यवादी कुलीन वर्ग के शासन की अनिवार्यता में परिवर्तन नहीं होगा। यह अपने सदस्यों के व्यक्तिगत गुणों के अतिरिक्त कुलीनवर्ग अपने आंतरिक संगठन से अधिकार प्राप्त करता है। यह असंगठित और खंडित जनता पर संगठित और शक्तिशाली अल्पसंख्यक वर्ग का निर्माण करता है। मोसका के शब्दों में अल्पसंख्यक बहुसंख्यक में प्रत्येक अकेले व्यक्ति के मुकाबले अप्रतिरोध्य है।

कुलीन वर्ग मुख्य निर्णय लेता है जिसका प्रभाव समाज पर पड़ता है। यहाँ तक कि तथा कथित लोकतांत्रिक समाजों में भी इन निर्णयों में आम लोगों की भावना की अपेक्षा प्राय: विशिष्टि वर्ग के चिंताएँ प्रकट होती है। कुलीनवर्ग सिद्धांतवादी बहुसंख्यक वर्ग को मुख्य दैनिक विषयों के प्रति उदासीन एवं असंबद्ध चित्रित करते हैं। अधिकांश जनता पर कुलीन वर्ग का नियंत्रण एवं प्रभाव होता है और वे कुलीन वर्ग के नियम को न्याय संगत ठहराने वाले प्रचार को निराशा में स्वीकार कर लेते हैं।

अधिकार

अधिकार का अर्थ है नियंत्रित करने की शक्ति या क्षमता

इसे किसी व्यक्ति या समूह की अपनी इच्छाएँ पूरी करने तथा अपने निर्णयों और विचारों को लागू करने की योग्यता के रूप में परिभाषित किया जाता है। इसमें दूसरों को उनकी इच्छा के

विरूद्ध प्रभावित करने तथा उनके व्यवहार को नियंत्रित करने की योग्यता भी शामिल है। अधिकार अनेक आयामों वाली संकल्पना है जिसमें विभिन्न परिभाषाएँ शामिल हैं।

कुछ अधिकार के विभिन्न आधारों पर जोर देते हैं (जैसे धन, हैसियत, ज्ञान, विशिष्टता, शक्ति, अधिकार) कुछ लोग अधिकार के विभिन्न रूपों की बात करते हैं जैसे प्रभाव, शारीरिक शक्ति या नियंत्रण; और कुछ लोग अधिकारों का प्रयोग करने की दृष्टिकोण से इसकी चर्चा करते हैं जैसे व्यक्ति या सामुदायिक उद्देश्यों, राजनीतिक उद्देश्यों, आर्थिक उद्देश्यों आदि के लिए।

कुल मिलाकर अधिकार संकल्पना में शामिल हैं :

क) संबंध स्थिति जहाँ अधिकारी का प्रयोग एक या अनेक के द्वारा किया जाता है।

ख) इसका संबंध परिणाम से उत्पन्न होता है।

कल्याणकारी राज्य : स्वतंत्रता, समानता और न्याय

कल्याणकारी राज्य

कल्याणकारी राज्य का प्रयोग मूल रूप से दूसरे महायुद्ध के दौरान ब्रिटेन के लिए लागू किया गया था। युद्ध के बाद इसका व्यापक प्रयोग होने वाले सामाजिक और आर्थिक नीति संबंधी परिवर्तनों की सुविधाजनक तरीके से बताने के लिए प्रयोग होने लगा। इन परिवर्तनों को प्रायोजित करने वाले व्यक्तियों के अनुसार ये ब्रिटिश समाज का निर्माण करेंगे।

इस प्रकार कल्याणकारी राज्य द्वारा निम्नलिखित तीन मुख्य सेवाएँ प्रदान की गई :

1) सामाजिक सेवाएँ जैसे सामाजिक सुरक्षा, राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवाएँ, शिक्षा, आवास, रोज़गार सेवाएँ तथा वरिष्ट, अक्षम लोगों और वंचित बच्चों के लिए कल्याणकारी सेवाओं में आंतरिक दिशा तथा विस्तार प्रदान करना

2) सर्वोच्च उद्देश्य और नीति के रूप में संपूर्ण रोज़गार प्रदान करना

3) राष्ट्रीयकरण का कार्यक्रम

ये तीन तत्व थे जिनके साथ कल्याणकारी राज्य की संरचना की गई।

व्यापक लोकतंत्र के संदर्भ में कल्याणकारी राज्य को अपेक्षाकृत अधिक समानता और कल्याणकारी सेवाओं के प्रति सामाजिक अधिकारों की मान्यता तथा सामाजिक आर्थिक सुरक्षा की मांग के लिए मुख्य स्तंभ के रूप में देखा जा सकता है।

व्यापक लोकतंत्र के संदर्भ में कल्याणकारी राज्य को अपेक्षाकृत अधिक समानता और कल्याणकारी सेवाओं के प्रति सामाजिक अधिकारों की मान्यता तथा सामाजिक आर्थिक सुरक्षा की मांग के लिए मुख्य स्तंभ के रूप में देखा जा सकता है।

जैसा कि भारत में लोकतांत्रिक गणराज्य की प्रस्तुति उसके संविधान की प्रस्तावना में की गई है कि यहाँ न केवल राजनीतिक दृष्टिकोण से अपितु सामाजिक दृष्टिकोण से भी एक लोकतांत्रिक व्यवस्था है दूसरे शब्दों यह न केवल सरकार का लोकतांत्रिक स्वरूप बनाता है अपितु लोकतांत्रिक समाज भी है जिसमें न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भातृभाव की आत्मा भी प्रदान करता है।

इस लोकतांत्रिक गणराज्य का अर्थ सभी लोगों की भलाई के लिए है जो कल्याणकारी राज्य की संकल्पना में समाया हुआ है जिससे राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों की प्रेरणा मिली है।

स्वतंत्रता

शस्त्र विहीन लोगों के हाथों में स्वतंत्रता का विचार सर्वाधिक शक्तिशाली शस्त्र है और इसने तानशाहों एवं साम्राज्यवादियों को परास्त किया है। लिबर्टी (स्वतंत्रता) शब्द लेटिन भाषा के शब्द लिबर से लिया गया है जिसका अर्थ होता है आजादी। कभी-कभी इसे नकारात्मक अर्थ के प्रतिरोध की अनुपस्थिति के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी इसे कुछ सामाजिक आर्थिक स्थितियों की उपलब्धता के रूप में भी देखा जाता है जिनमें लोग अपने व्यक्तित्व का विकास करते हैं सकारात्मक अर्थ।

समानता

समानता का अर्थ सब के साथ एक जैसा व्यवहार प्रदान करना नहीं है। इसका अर्थ है आनुपातिक समानता समान-लोगों में समानता और असमान लोगों में असमानता। समानता और असमानता के व्यवहार का आधार तर्क संगत और न्यायोचित होना चाहिए।

समानता के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लास्की कहते हैं कि समानता का अर्थ है निम्नलिखित चीजें :-

1) समाज में विशेष अधिकारों की समाप्ति

2) सभी को पर्याप्त अवसरों की उपलब्धता ताकि प्रत्येक अपने आप अपना विकास कर सके

3) सामाजिक लाभ सबको प्राप्त हो और किसी को भी अग्र लिखिए कारण से वंचित न रखा जाए। जन्म या अभिभावक और आनुवांशिक कारणों के कारण असमान मानना न्यायसंगत नहीं है।

4) आर्थिक और सामाजिक शोषण समाप्त करना।

न्याय

विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं में न्याय की विभिन्न संकल्पनाएँ हैं। न्याय की परिभाषा में मुख्य कठिनाई यह है कि यह स्वतंत्र संकल्पना नहीं है। न्याय का सामाजिक व्यवस्थाओं के मूल्यों की व्यवस्था और व्यवहार से निकट का संबंध है। प्रत्येक व्यवस्था कुछ नियमों और मूल्यों से नियंत्रित होती है और इससे फिर न्याय का निर्धारण होता है। समय और हालातों में परिवर्तनों से मूल्यों में परिवर्तन होता है जिससे न्याय की संकल्पना में भी परिवर्तन होता है।

भारतीय परिदृश्य

देश की आजादी से राष्ट्रीय लोकतांत्रिक प्रक्रिया में लोगों की सक्रिय भागीदारी ने अधिकतर राजनीतिक संरचनाओं या दलों की गतिशीलता के माध्यम से स्वतः ही भारत में सामाजिक परिवर्तन और आधुनिकता की बहुत संरचनाओं के मत स्वरूप की शरूआत कर दी थी।

इसका प्रत्यक्ष सामाजिक-संरचनात्मक महत्व है क्योंकि उनकी मुख्य प्रतिबद्धता अधिकार स्रोत के लिए वैधानिक प्रवेश मार्ग बनाने की थी।

भारत में बृहत् राजनीतिक संरचना की एक विचित्र विशेषता राजनीति अधिकार के क्षेत्र में एक दल (कांग्रेस) के आधिपत्य की निरंतरता रही है जिसे केवल आंशिक रूप से 1967 के आम चुनावों में भंग किया गया था।

यह तथ्य आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से संबंधित भारत में राजनीतिक संरचना के विश्लेषण के लिए एक ऐतिहासिक स्थिति प्रदान करता है।

आधुनिकीकरण के राजनीतिक ढाँचों की जड़ें अधिकारों के बदलते वैधानिक स्रोतों में तथा इसके विस्तार एवं केन्द्रीयता की प्रक्रिया का सामाजिक संरचना में होना अनिवार्य है।

पारंपरिक राजतंत्र वाले समाज में अधिकार स्रोत पारंपरिक रूप से स्थापित किए गए हैं और राजा के सांस्थिक पदों, प्रधानों, या ऐसे पादरी शासकों में स्थापित किए गए हैं जो प्राप्त गुणों के कारण इन पदों तक अपनी पहुँच बना पाए हैं।

इन राजनीतिक पदों को प्रदान करने के नियमों के आधार पर ये जाति के वंशानुगत सिद्धांत पर या समकक्ष हैसियत वाले समूहों में असमान रूप से वितरित किए जाते हैं। राजनीतिक पदों पर नियुक्त होने वालों का चरित्र अधिकारवादी होता है और उसी के अनुरूप राजनीतिक नियम निरंकुश होते हैं इस प्रकार कार्य का क्षेत्र जिसे वास्तव में राजनीति या जिसे राष्ट्र अथवा समुदाय के लिए नीति बनाने का कार्य कहा जा सकता है कुछ ही लोगों तक सीमित है, अब पारंपरिक

रूप से समाप्त हो गया है। ऐसी व्यवस्था में अधिकार का आनुवांशिक रूप होता है सहमति से नहीं होता। यह अधिकार संरचना में पदधारियों के अन्य कार्यों से भिन्न नहीं है।

शिक्षा

हमारे देश में राज्य पर्याप्त संख्या में शैक्षिक संस्थाएँ उपलब्ध करता है। भारत ने अपने संविधान में अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की शिक्षा के लिए स्थाई प्रावधान किए हैं। भारतीय संविधान के स्थाई प्रावधानों के अंतर्गत कोई भी सरकारी शैक्षिक संस्था या सरकारी सहायता प्राप्त शैक्षिक संस्था, किसी भी व्यक्ति को धर्म, जाति, भाषा या इनमें से किसी के भी आधार पर प्रवेश देने से मना नहीं कर सकती (अनुच्छेद 29 (2))

फिर सभी अल्पसंख्यकों को चाहे वे धर्म के आधार पर हों या भाषा के आधार पर, अपनी पंसद की शैक्षिक संस्थाएँ स्थापित करने और संचालित का मौलिक अधिकार है। (अनुच्छेद 30 (1)) और राज्य सहायता प्रदान करने में किसी भी शैक्षिक संस्था के साथ इसे आधार पर पक्षपात नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा के आधार पर किसी अल्पसंख्यक प्रबंधन के अन्तर्गत आती है (अनुच्छेद 30(2))

अंत में, मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए (अनुच्छेद 45) राज्य सार्वजनिक स्वास्थ्य सुधारने के लिए और जीवनस्तर में सुधार के लिए कार्य करेगा और चिकित्सीय उद्देश्यों को छोड़ कर शराब, और नशीली दवाओं के उपभोग पर प्रतिबंध लगाएगा। (अनुच्छेद 47)

राष्ट्रवाद : धर्म, जाति और वर्ग

राष्ट्रवाद

राष्ट्र-राज्य राष्ट्रवाद की उन्नति से जुड़े होते हैं जिसे ऐसे प्रतीकों और विश्वासों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो एक साधारण राजनीतिक समुदाय का एक हिस्सा होने का अहसास कराते हैं। इस प्रकार व्यक्ति भारतीय, ब्रिटिश, अमेरीकन या रूसी होने का गर्व महसूस करते हैं।

संभवत: लोग हमेशा किसी न किसी प्रकार के सामाजिक समूहों के साथ एक प्रकार की पहचान का अनुभव करते हैं। जैसे उनके परिवार, गाँव या धार्मिक समुदाय। फिर भी राष्ट्रवाद केवल आधुनिक राज्य के विकास के रूप में प्रकट होता है।

संस्कृति और धर्म

धर्मों की सुरक्षा के लिए भारतीय राज्य एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारतीय लोगों की एकता और भाई-चारे से धर्म निरपेक्ष राज्य होने के विचारों को अनेक बार प्रकट किया है इसका अर्थ है कि राज्य सभी धर्मों की समान रूप से रक्षा करता है और अपनी तरफ से राज धर्म नहीं थोपता।

यह स्व्यं में भारतीय लोकतंत्र की एक उल्लेखनीय उपलब्धि है जबकि हमारे पड़ोसी जैंसे पाकिस्तान, बंगलादेश, श्रीलंका, व बर्मा ने राजधर्म के रूप में विशेष धर्मों को अपनाया हुआ है। भारत में एक तरफ तो राज्य अपना कोई धर्म स्थापित नहीं करेगा वहीं दूसरी तरफ किसी धर्म विशेष को विशेष संरक्षण प्रदान नहीं करेगा। राज्य किसी भी नागरिक को किसी विशेष धर्म या धार्मिक संस्थाओं की प्रगति या देखभाल करने के लिए किसी प्रकार का शुल्क देने के लिए विवश नहीं करेगा।

संपूर्ण सहायता प्राप्त किसी भी शैक्षिक संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा प्रदान नहीं की जाएगी। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी श्रद्धा की स्वतंत्रता होगी तथा अपने धर्म को प्रकट करने, पालन करने तथा उसकी प्रगति करने की भी स्वतंत्रता होगी। जहाँ पर धार्मिक समुदाय अल्पसंख्यक ही है वहाँ संविधान इसकी संस्कृति और धार्मिक हितों को बनाए रखने में सहायता प्रदान करेगा।

भारतीय संविधान में अनुच्छेद 29 के अनुसार राज्य समुदाय की अपनी संस्कृति के अलावा अन्य किसी संस्कृति को नहीं थोपेगा।

ऐसे समुदाय को अपनी पसंद की शैक्षिक संस्थाएं स्थापित करने और उनके संचालन का अधिकार होगा और राज्य शैक्षिक संस्थाओं को अनुदान प्रदान करने के में अल्पसंख्य समुदाय द्वारा संचालित किसी शैक्षिक संस्था के विरूद्ध इस आधार पर भेदभाव नहीं करेगा कि यह धार्मिक समुदाय के प्रबंधन में आती है (अनुच्छेद 30)

जाति और राजनीति

जाति अपने पारंपरिक कार्यों और स्वरूपों को छोड़ती है शनै: शनै: नए स्वरूप और कार्य अपनाने लगती है। यह विशेष रूप से सार्वजनिक जीवन और राजनीति के क्षेत्र में और अधिक प्रभावशाली हो जाती है। यह भारतीय राजनीतिक मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इन दो संस्थाओं में एक दूसरे से कैसे और क्यों निकटता हुई? इसके परिणामों के बारे संक्षिप्त चर्चा आगे की जा रही है।

इन दोनों के क्षेत्रों में एक दूसरे का प्रवेश करने का प्रथम और सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण है कि दोनों के मूल में सामाजिक जीवन है राजनीतिक संबंध अनिवार्यत: सामाजिक संबंध होते हैं। यह व्यवस्था सामाजिक और आर्थिक प्रभुत्व प्राप्त करने वाली है। देश की राजनीतिक एवं प्रशासनिक संरचना किसी काल विशेष में विद्यमान सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक संबंधों को प्रकट करती है। ऐसे समाज में जहाँ पारस्परिक संबंध और संस्थागत प्रबंध मुख्यत: जाति आधारित होते हैं, राजनीति में मिश्रित जातियाँ हो सकती हैं।

रजनी कोठारी के अनुसार जो लोग भारतीय राजनीति में जातिवाद की शिकायत करते हैं, केवल तुच्छ राजनीति की बात करते हैं जिसका समाज में कोई आधार नहीं है। उनमें संभवत: या तो राजनीति की प्रकृति का अथवा जाति व्यवस्था की प्रकृति की स्पष्ट संकल्पना का अभाव है। राजनीतिक लोकतंत्र की प्रकृति ने जाति और राजनीति को परस्पर निकट ला दिया है।

राजनीति एक स्पर्धात्मक व्यवसाय है। इसका उद्देश्य कुछ उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अधिकार प्राप्त करना है। और इसकी एक प्रक्रिया स्थितियों को गतिशील और समेकित करने के लिए विद्यमान गठबंधनों को पहचानने और चालकी से प्रभावित करने वाली है। इस प्रकार किसी नेता या दल के द्वारा उठाए गए कुछ विषयों की तरफ जनता को संगठित करना और गतिशील करना राजनीति का केन्द्र बिन्दु होता है।

ये गतिशीलताएँ समूह के विचारों और निष्ठाओं के आधार पर की जाती हैं लेकिन मूलभूत प्रकृति और हितों में भिन्नता के कारण सभी को एक विषय पर एक दिशा में गतिशील नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार सदियों से समाज को विभाजित करने वाला जातिवाद, समूह गतिशीलता की श्रेष्ठ तकनीक के रूप में कार्य करता है। राजनीतिक जातिवाद को संगठन के लिए सर्वश्रेष्ठ स्पष्ट एवं लचीला आधार पाते हैं। चूंकि अधिकार और हैसियत अब जाति के आधार पर प्रदान नहीं की जाती इसलिए निम्न जाति के लोगों को राजनीति में शामिल होने के लिए बढ़ावा दिया गया है जिससे दूसरे लोग राजनीति से बाहर हो जाएँ।

सभी श्रेणियों के लोगों ने प्रचार के लिए जाति को आधार बना कर अपने पक्ष में सार्वजनिक सहायता को गतिशील बनाने का प्रयास किया है क्योंकि भारतीय समाज में ऐसी गतिशीलता के लिए उन्हें पहले से ही तैयार आधार मिल जाता है। उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश तथा बिहार की राजनीति के गुटबंदी नेटवर्क में विभिन्न जाति समूहों के शीघ्र ही सत्ता प्राप्ति के अच्छे उदाहरण हैं जिन्होंने गतिशीलता का सर्वोत्तम माध्यम प्रदान किया है।

वर्ग और समाज

वर्ग वे सामाजिक समूह हैं जो किसी समाज में उच्च विशेष स्थितियाँ और निम्न विशेष स्थितियां प्राप्त कर लेते हैं। सामाजिक वर्ग श्रम विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। ये समान सामाजिक हैसियत वाले लोगों से बनते हैं जो एक-दूसरे को सामाजिक समानता के रूप में समझते हैं। प्रत्येक वर्ग की एक उपसंस्कृति होती है जिसमें प्रवृतियाँ, विश्वास, मूल्य और व्यवहार के नियम दूसरे वर्गों से भिन्न होते हैं।

सामाजिक वर्ग समुदाय में कुल सामाजिक और आर्थिक स्थिति के आधार पर होते हैं जिसमें धन, आमदनी, व्यवसाय, शिक्षा, आत्म-पहचान, वंशानुगत हैसियत, समूह की भागीदारी तथा दूसरों द्वारा प्रदान मान्यता शामिल होती हैं।

यद्यपि वर्ग रेखाएँ स्पष्ट रूप से नहीं खींची जाती तो भी सामाजिक हैसियत की निरंतरता ऐसे बिन्दुओं को प्रकट कर देती हैं।

किसी वर्ग के सदस्यों का सही आकलन करना कठिन है। वर्ग की उपसंस्कृति बच्चों को अपने अभिभावकों की हैसियत बनाए रखने के लिए तैयार करती है। वर्ग के बारे में मार्क्स और वेबर के विचारों की चर्चा तथा समाज शास्त्र में वर्ग विश्लेषण की आधुनिक विचारधाराओं की समीक्षा आगे की जा रही है।

कार्ल मार्क्स

मार्क्स के लिए वर्ग के अनेक प्रकार के प्रयोजन हैं लेकिन मार्क्स के सामाजिक वर्ग के सामान्य स्वरूप के आवश्यक पक्ष स्पष्ट हैं :

क) प्रत्येक समाज को आश्रित बच्चों, रोगियों और वृद्धों को लिए अतिरिक्त, भोजन, आवास एवं वस्त्रों का उत्पादन करना होता है। जब एक वर्ग जीवित रहने के लिए तुरंत उपभोग न किए जाने वाले संसाधनों पर निजी संपत्ति के रूप में दावा करने लगता है तो वर्ग भेद आरंभ हो जाते हैं।

ख) इसलिए वर्गों को उत्पादक संपत्ति के स्वामित्व (या जिनका स्वामित्व नहीं है) के संदर्भ में परिभाषित किया जाता है जो अतिरिक्त उत्पादन को प्राप्त करना संभव बनाते हैं। मानव इतिहास के विभिन्न कालों में संपत्ति के विभिन्न रूपों (दास, जल, भूमि, पूँजी) ने सामाजिक संबंधों को महत्वपूर्ण स्वरूप प्रदान किया है। लेकिन सभी वर्ग व्यवस्थाओं में दो मुख्य वर्ग होते हैं। मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद में बूर्जुआ और मध्य वर्ग में दो महत्वपूर्ण वर्ग संबंध पाए जाते हैं।

मैक्स वेबर

वर्ग के बारे में वेबर की विश्लेषणात्मक विचारधारा को वर्ग का श्रेष्ठ व सर्वाधिक प्रभावशाली विकल्प माना जाता है। मार्क्स से भिन्न वेबर अन्य तथ्यों पर जोर देता है जो असमानता को बढ़ावा देते हैं। वह विशेष कर हैसियत या सम्मान और शान को भेद कारक परिवर्तन मानता है।

उसने वर्ग हैसियत तथा अधिकार तथा अधिकार के बीच संबंध पर जोर दिया गया है। उसका तर्क है कि वर्ग एक ऐसी श्रेणी या लोगों का समूह है जिनके जीवन अवसरों की स्थिति एक जैसी होती है जो वर्ग स्थिति का निर्धारण करने का एक महत्वपूर्ण तथ्य है। मार्क्स ने स्वामित्व और अस्वामित्व को मूल मापदंड माना है जबकि वेबर ने गैर आर्थिक तथ्यों को महत्व दिया है। वेबर मार्क्स से आधुनिक सभ्यताओं में नौकरशाही को शक्ति के बुद्धिमान एवं प्राप्त व्यवस्था के रूप में देखने में भी भेद करते हैं। वेबर के अवसरों और प्रभावित करने वाले विभिन्न तथ्यों पर जोर देने से उसकी वर्ग और सामाजिक स्तरीकरण के विश्लेषण की विचार धारा को समाजशास्त्र के सिद्धांत में प्रभावशाली बना दिया है।

नागरिक समाज, सामुदायिक संगठन, सामाजिक सम्पत्ति

नागरिक समाज

मौटे तौर पर नागरिक समाज उसे कहा जा सकता है जिसमें राज्य के हस्तक्षेप के बिना सभी प्रकार की सार्वजनिक एक राजनीतिक गतिविधियाँ होती हैं। इसमें सभी स्वतंत्र, स्वयं सेवी एवं निजी क्षेत्रों की वे गतिविधियाँ शामिल हैं जिनमें व्यक्ति, परिवार, मीडिया, व्यवसाय और नागरिक संस्थाएँ एवं संगठन आदि शामिल होते हैं। नागरिक सामाजिक संगठनों का दायित्व राजनीतिक स्वतंत्रता में वृद्धि करना, मौलिक अधिकारों की रक्षा करना, नागरिक संस्थाओं को व्यापक बनाना, तथा सरकार की अपेक्षा कम लागत से सामाजिक विकास को बढ़ावा देना है। ये दायित्व गैर सरकारी संगठनों, सामाजिक आंदोलनों, सांमुदायिक लोगों के संगठनों, धार्मिक समूहों, कृषक एसोसिएशनों, उपभोक्ताओं और व्यापार यूनियनों की गतिविधियों में देखे जाते हैं। सिविल समाजों की शासन की औपचारिक संरचनाओं से बहिष्कृत लोगों जैसे महिलाएँ, निर्धन व अल्पसंख्यक (यहूदी, धार्मिक प्रजातीय) के लिए विशेष भूमिका होती है। नागरिक सामाजिक संस्थाएँ प्राय: विकल्पों का सम्मान करती है।

नागरिक समाज जितना अधिक मजबूत या अधिक सघन व ऊंचे स्वर में अपना पक्ष रखने वाला होगा लोकतांत्रिक कार्य उतने ही अच्छे होंगे। नागरिक समाज लोकतंत्र की पूर्व शर्त है।

सामुदायिक संगठन

अच्छे नागरिक प्रशासन के लिए समुदाय आधारित लोगों के संगठन भी महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। इन संगठनों को लोकतांत्रिक संगठन कहा जाता है जो अपने सदस्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं और उनके प्रति जिम्मेदार होते हैं। सामुदायिक विषयों को उठाने के लिए समुदाय आधारित संगठनों को सामूहिक रूप से संगठित करने की प्रक्रिया का लम्बा इतिहास है। स्वयं लोग ये संगठन बनाते हैं और इसका कार्यक्रम तैयार करते हैं। गैर सरकारी संगठन सिविल समाज में अधिक ध्यान आकर्षित करते है क्योंकि वे सामाजिक सेवाओं की आपूर्ति, सिफारिश और शक्ति सम्पन्नता के वाहक होते हैं।

सामाजिक सम्पत्ति

सामाजिक सम्पत्ति सामान्यतः लोकतंत्रवाद को तथा विशेषतः लोकतांत्रिक कार्य निष्पादन को बढ़ावा देती है। सामाजिक सम्पत्ति सामान्य उद्देश्य के लिए समूहों और संगठनों में इकट्ठे होकर कार्य करने की लोगों की योग्यता है। सामाजिक सम्पत्ति को सामान्य रूप से समूह के उन सदस्यों के पारस्परिक कुछ अनौपचारिक मूल्यों या नियमों की विद्यमानता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो परस्पर सहयोग करना चाहते हैं। सामाजिक सम्पत्ति में सामाजिक संगठन जैसे संजाल, नियम और सामाजिक विश्वास की विशेषताएं शामिल हैं जो पारस्परिक लाभ के लिए सहयोग और समन्वय प्रदान करती हैं।

सम्पत्ति के अन्य रूपों की तरह सामाजिक सम्पत्ति भी उत्पादक तथा कुछ उद्देश्यों को उपलब्ध कराने वाली होती है जिसके अभाव में उन्हें प्राप्त करना असंभव है। यदि कोई लोकतांत्रिक प्रशासन को बढ़ावा देना चाहता है तो उसे सहकारी सामुदायिक विकास योजनाओं की तरह संजाल को समर्थन देना चाहिए।

स्थानीय प्रशासन और लोकमत

स्थानीय स्व-प्रशासन-पंचायती राज

भारत में गाँवों में स्व-प्रशासन व्यवस्था है पंचायती राज। भारत में पंचायती राज व्यवस्था बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ लगभग 80 प्रतिशत आबादी गाँवों में रहती है। भारत में पंचायती राज का प्रादुर्भाव 1957 में स्थापित बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिशों के आधार पर हुआ। यह समिति 1952 तथा 1953 में आरंभ किए गए क्रमशः सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा के अध्ययन के लिए गठित की गई थी।

1992 में संविधान में 73 वां संविधान संशोधन किया गया जिससे पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक स्वरूप प्राप्त हुआ। इससे प्रत्येक राज्य (प्रांत) के लिए तीन स्तरीय व्यवस्था का ग्राम स्तर (ख) मध्यवर्ती स्तर तथा (ग) जिला स्तर पर व्यवस्था करना अनिवार्य भी होगा।

लोकमत

लोकमत को लोकतंत्र का आधार कहा जाता है। यह सरकार और जनता के बीच की कड़ी है। लोकमत का प्रयोग प्राय: उन मामलों से संबंधित लोगो के समग्र विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए किया जाता है जो उनके, समुदाय के तथा समाज के हितों को प्रभावित करते हैं। राजनीतिक व्यक्तियों, संस्थाओं तथा विचार धाराओं के बारे में लोगों की संकल्पना नीति बनाने में कार्य करती है। लोकतंत्र में सरकारों को चलना तथा गिरना लोकमत पर आधारित होता है।

लोकमत को मीडिया, राजनीतिक दलों, दबाव समूहों, चुनावों, विधान मंडल में बहसों, शैक्षिक संस्थाओं तथा सार्वजनिक बैठकों जैसे साधनों के द्वारा बनाया जाता है। प्रेस, रेडियो, दूरदर्शन और सिनेमा ऐसे कई साधन हैं जो लोगों तक राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक विचार पहुंचाते हैं। यही कारण है कि लोकतंत्र में प्रेस की स्वतंत्रता पर पर्याप्त बल दिया जाता है।

सारांश

स्वतंत्रता के पश्चात भारत में राजनीतिक प्रवृतियाँ पर्याप्त रूप से समन्वयवादी रही हैं जैसे (क) क्षेत्रीय हित समूहों द्वारा स्पष्ट मांग करना, (ख) भाषा के आधार पर राजनीतिक क्षेत्र में राज्यों का गठन, (ग) आर्थिक नीतियों के क्षेत्र में सामजंस्यवादी अर्थव्यवस्था पर जोर देना, (घ) धर्म और संस्कृति में धर्म निरपेक्षता की विचार धारा, और (ङ) अंतर्राष्ट्रीय संबंधों आदि में तटस्थता। ये सभी भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रमुख सामंजस्यवादी प्रतिबिम्ब हैं।

राजनीति, जाति संघ संबंधी समूहों तथा यहूदी एकता संगठनों की पारंपरिक संस्थाओं में समायोजन में भी सामंजस्यवादी तथ्य प्रकट होते हैं। उन्होंने पर्याप्त सफलतापूर्वक और बहुत कम विकृति के साथ आधुनिक राजनीतिक संस्कृति की जरूरतों के अनुसार काफी हद तक ढाल लिया है।

हालांकि इस प्रक्रिया में कुछ गलत समायोजन होना स्वाभाविक है। अब तक भारतीय राजनीति की सामंजस्यवादी गतिशीलता भारतीय संस्थाओं के स्वभाविक लचीलेपन के कारण अपने सदमे को झेलने और भारत की पारंपरिक संस्कृति में सहन शीलता की प्रवृत्ति बनाने में सफल रही

को झेलने और भारत की पारंपरिक संस्कृति में सहन शीलता की प्रवृत्ति बनाने में सफल रही है। हम आशा कर सकते हैं कि भविष्य में राजनीतिक संरचना को चुनौती देने वाले राजनीतिक विरोधी आंदोलनों में सामंजस्यवादी गतिशीलता बार-बार विजयी रहेगी। यह भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण में अपना स्थान बना सकती हैं धीमे ही सही लेकिन सामाजिक रूपांतरण की लागत निश्चित रूप से कम होगी।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

मिश्रा. के.के. पॉलिटिकल थ्योरी (1988), नई दिल्ली, एव चांद एंड कं.।

नारंग, ए.एस. इंडियन गवर्नमें एंड पॉलिटिक्स (1996), नई दिल्ली, गीतांजली पॉब्लिशिंग हाऊस।